प्रवचन-४८, गाथा-४४, शनिवार, श्रावण शुक्ल, १२ दिनांक २३-०८-१९८०

४४वीं (गाथा) चलती है न? पहले से फिर से।

**शुद्ध जीवास्तिकाय...** यह शब्द क्यों लिया? कि असंख्यप्रदेशी अस्तिकाय काय है। आत्मा असंख्यप्रदेशी ज्ञानकाय है। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने जानी नहीं और किसी ने कही नहीं। इसके लिये जीव को-ऐसा न कहकर 'जीवास्तिकाय' ऐसा शब्द लिया है। आहाहा! शुद्ध जीव राग और विकल्प से रहित प्रभु शुद्ध—जीव-अस्ति-काय—अन्दर असंख्य प्रदेशी समूह असंख्य प्रदेश में गड़बड़ है न? विद्यानन्दजी कहते हैं, वह असंख्यप्रदेशी नहीं, अखण्ड प्रदेशी है। वेदान्त की शैली में ले जाते हैं। असंख्य प्रदेश हैं।

सैंतालीस शक्ति में भी ऐसी शक्ति की नित्य क्रिया, जो नित्य प्रदेशी असंख्य प्रदेशी नित्य है। सैंतालीस शक्ति में ऐसा लिया है। नित्य प्रदेश असंख्य हैं, यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त, वीतराग के अतिरिक्त किसी ने देखा नहीं। उन असंख्य प्रदेशों में अनन्त आनन्द आदि गुण का क्षेत्र है। एक प्रदेशी क्षेत्र नहीं है, तथापि उन असंख्य प्रदेश को भी एक न्याय से पंचास्तिकाय में एक प्रदेशी कहा है क्योंकि खण्ड नहीं है, अखण्ड असंख्य प्रदेश है। आहाहा! प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। इससे शुद्ध-जीव-अस्ति-काय—शुद्ध जीव अस्ति समूह है। असंख्य प्रदेशी समूह प्रभु भगवान आत्मा, निर्मलानन्द प्रभु अनादि-अनन्त विराजता है। आहाहा!

**चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से...** उसमें—अभ्यन्तर में मिथ्यात्व नीचे आया था। ***एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय—ऐसा चौदह प्रकार का अभ्यन्तरपरिग्रह है।*** यह नहीं और ***क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन—ऐसा दसप्रकार का बाह्यपरिग्रह है;...*** (ऐसे) चौबीस प्रकार के परिग्रह भगवान आत्मा में नहीं हैं। वह तो अमृत का सागर भगवान, अतीन्द्रिय अमृत और

अतीन्द्रिय वीतराग की मूर्ति प्रभु है। उसमें परिग्रह का अभाव **होने से निर्ग्रन्थ है;...** निर्ग्रन्थदशा प्राप्त करना, वह दूसरी चीज़ है। यह तो आत्मा ही निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ है तो निर्ग्रन्थदशा प्रगट होती है। आहाहा! मुक्त है तो मुक्तदशा प्रगट होती है। इसी प्रकार यहाँ आचार्य प्रभु कहते हैं कि आत्मा वस्तु ही निर्ग्रन्थ है। उस वस्तु में किसी विकल्प का अवकाश नहीं है। राग के, दया के, महाव्रत के किसी विकल्प का अवकाश नहीं, ऐसा यह आत्मा निर्ग्रन्थ है। चौबीस परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ है। आहाहा! धन, धान्य, क्षेत्र आदि और मिथ्यात्व या चौदह परिग्रह उसमें नहीं है। पर्याय में अज्ञानी ने अनादि से मान रखा है। अन्तर में देखो तो, प्रभु! **शुद्ध जीवास्तिकाय बाह्य-अभ्यंतर चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से...** परित्याग। अकेला त्याग नहीं कहा। परि, उपसर्ग लिया है। सर्वथा प्रकार से त्याग। उसमें किसी परिग्रह की गन्ध नहीं है। राग या द्वेष का अंश नहीं है। उसके परित्यागस्वरूप होने से निर्ग्रन्थ कहा गया है। आहाहा!

**सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के...** देखो! भाषा चेतनकर्म ली है। राग और द्वेष, दया और दान, काम और क्रोध, यह चेतन का कार्य है। विकारी, परन्तु चेतन की पर्याय है। उस चेतनकर्म के अभाव के कारण, भगवान आत्मा में चेतन के विकारी कार्य का अभाव होने से **निराग है;...** आहाहा! एक-एक शब्द में पूरे आत्मा की स्थिति पूर्ण क्या है, यह बताते हैं और पूर्णानन्द का नाथ, उसकी अनुभूति और अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है। वहाँ से तो धर्म का पहला प्रारम्भ होता है। इस कारण यहाँ कहा कि वह तो निर्ग्रन्थ है। उसमें कोई ग्रन्थ नहीं है और वह वैरागी है। निराग है। निराग कहो या वैराग्य कहो, उसमें चैतन्य का विकारी परिणाम, प्रभु चैतन्य के द्रव्य में नहीं है। आहाहा! यह अनुभूति करना। सम्पूर्ण बारह अंग का सार तो यह है। बारह अंग में यह भी कहा है। बारह अंग विकल्प है। कलश-टीका में लिया है। परन्तु उसमें अनुभूति कही है। प्रभु! तेरी चीज़ है, वह निराग है और निर्ग्रन्थ है। उसका अनुभव करना, वही धर्म की पहली सीढ़ी और शुरुआत कही जाती है।

**मुमुक्षु :** मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह।

**निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण...** प्रभु में मिथ्यात्व शल्य नहीं, माया शल्य नहीं। आहाहा! और **निदान, माया और मिथ्यात्व—इन**

**तीन शल्यों...** रहित प्रभु अन्दर है। जिसमें शल्य का स्पर्श नहीं, ऐसा भगवान परमात्मा अन्दर विराजता है, उसकी अनुभवदृष्टि करो। आहाहा! व्यवहार होता है परन्तु व्यवहार से अनुभूति नहीं होती। आहाहा! व्यवहार तो वाणी आदि सब व्यवहार है। अरे! गुणभेद से समझाना, वह भी व्यवहार है, परन्तु व्यवहार होने पर भी उससे यह चीज़ अनुभव में नहीं आती। वह चीज़ तो महाप्रभु, चैतन्य महाप्रभु, **चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग है; ( निदान, माया और मिथ्यात्व— ) इन तीन शल्यों के अभाव के कारण निःशल्य है;...** मुनि को निःशल्य व्रती कहा है। तत्त्वार्थसूत्र में व्रति-मुनि उसे कहते हैं, 'निःशल्योव्रती' तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा सूत्र है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु में शल्य ही है नहीं। आहाहा! वस्तु में शल्य है नहीं तो वस्तु का अनुभव और सन्मुख हुआ, तो पर्याय में भी शल्य नहीं है। आहाहा! उसे निःशल्य व्रती सन्त कहते हैं। जैनदर्शन के सन्त (कहते हैं)। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं है, कोई पक्ष-वाड़ा नहीं है। वह अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु आदि जो छह द्रव्य हैं, ऐसा भगवान ने देखा है और कहा है और ऐसा सार बताया है। आहाहा! तो वस्तु की स्थिति बताते हैं। प्रभु! तेरा आत्मा ऐसा है, ऐसा कहते हैं। देखो... आहाहा!

**शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीवास्तिकाय को...** देखो! लिया। शुद्ध निश्चय अभेद दृष्टि करने से भेदपने का लक्ष्य छोड़ना, अभेददृष्टि करना, वह शुद्धनय है। आहाहा! उस **शुद्ध जीवास्तिकाय को द्रव्यकर्म,...** नहीं है। आहाहा! आठ कर्म नहीं है। वैसे बोलने में तो ऐसा आवे न, प्रभु! ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी। ज्ञान को ज्ञानावरणी ने आवरण किया, दर्शन को दर्शनावरणी ने आवरण किया। ये सब निमित्त के कथन हैं। वस्तु के स्वरूप में ये नहीं हैं। आहाहा! भगवान अन्दर आठ कर्म से रहित है और भावकर्म से रहित है। पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव, जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे - ऐसे भाव से भी प्रभु तो रहित है। वह मलिन अंश निर्मलानन्द नाथ में नहीं है। प्रभु! तू निर्मल नाथ है। आहाहा!

आचार्यों ने जगत को भगवानरूप से बुलाया है। आहाहा! भगवान! आहाहा! ७२ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य ने तीन बार भगवान कहा है। भगवान! तुझमें पुण्य-पाप नहीं न, प्रभु! तू तो भगवान है न! आहाहा! रहित है तो रहित हो जा। आहाहा! द्रव्य, शुभाशुभभाव से भगवान तू रहित है तो रहित हो जा। तेरी मान्यता ने शल्य डाला है, मान्यता ने घर डाला है। मैं राग हूँ, मैं पुण्य हूँ, मैं पुण्य की क्रिया का कर्ता हूँ, वह सब मिथ्यात्वभाव का शल्य है। पर्याय में अनादि का अभ्यास होने से, भगवान भावकर्म से रहित दिखता नहीं। अन्दर

में भावकर्म से रहित और नोकर्म—शरीर, वाणी, मन का **अभाव होने के कारण सर्वदोषविमुक्त है;...** सर्वदोषविमुक्त प्रभु अन्दर है। आहाहा!

**शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** आहाहा! भगवान प्रभु आत्मा ऐसा है कि निज तत्त्व मुझे मिले, ऐसी वांछा से रहित वह चीज़ है। आहाहा! है? **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** निज परमतत्त्व की वांछा का प्रभु में अभाव है। आहाहा! गजब काम है न! ऐसा प्रभु एक पैसे में, एक इज्जत में या भोग में, भव के कारण के सेवन में रुक जाता है। आहाहा! भव और भोग से रहित, भव और भोग से रहित प्रभु भव के कारण में रुक जाता है। प्रभु! तेरा परिभ्रमण मिटता नहीं। तुझमें परिभ्रमण का कारण नहीं है न, नाथ! आहाहा! कहा न?

**परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** तुझमें.. आहाहा! इच्छा का तो अभाव है। मोक्ष की इच्छा तो नहीं, मोक्ष तो पर्याय है। यहाँ तो परमतत्त्व कहा है। निज परमतत्त्व, अपना जो निज परमस्वरूप भगवान, उसे निज तत्त्व की वांछा भी नहीं है। वांछा तो राग है। आहाहा! एकान्त लगे, प्रभु! निश्चय.. निश्चय.. निश्चय लगे। एकान्त लगे। व्यवहार होता है परन्तु वह कोई लाभदायक नहीं है। व्यवहार सब हेय है। ५०वीं गाथा में कहेंगे। ५० में। अपने अतिरिक्त सब परद्रव्य हैं, परभाव है, हेय है। समझ में आया? ५० वीं गाथा देखो! आहाहा!

'**पूर्वोक्तसकलभावाः**' ५० वीं गाथा। '**पूर्वोक्तसकलभावा**' पूर्व में कहे वे उदयादि सकल भाव परद्रव्य हैं। आहाहा! वे परस्वभाव हैं। '**परसहावमिदि हेयं**' आहाहा! अपने आत्मा के अतिरिक्त कोई भी पर्याय.. यहाँ तो उसे परद्रव्य कहा है। और '**परस्वभावाः**' कहकर हेय कहा। '**सगदव्वमुवादेयं**' एक स्वद्रव्य ही उपादेय है। आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष वह पर्याय है, परन्तु उसकी बात नहीं की। '**सगदव्वमुवादेयं**' स्वद्रव्य ही आदरणीय है। त्रिकाली चैतन्य रस का कन्द प्रभु, '**सगदव्वमुवादेयं अन्तरतच्चं हवे अप्पा॥**' वह अन्तरतत्त्व जो शुद्ध अखण्डानन्द, पूर्ण तत्त्व की ही जिसमें वांछा नहीं, ऐसा पूर्ण तत्त्व जो अन्तरतत्त्व है, वही आत्मा और वही उपादेय है। आहाहा! व्यवहार के रसिकों को कठिन लगे परन्तु वहाँ तो व्यवहार की गन्ध भी नहीं है, क्योंकि उसमें से छूट जाता है। उसकी चीज़ हो तो छूटे कहाँ से? उसका जो ज्ञान-दर्शन आनन्दस्वभाव है, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण की संख्या अनन्त और एक-एक गुण का सामर्थ्य अनन्त, एक-

एक गुण में अनन्त प्रभुता। उसमें प्रभुत्व नाम का एक गुण है और उस गुण का सर्व गुण में उसका रूप है, तो अनन्त गुणरूप प्रभु है, ऐसा भगवान, आत्मा वही एक उपादेय है। बाकी सब परद्रव्य, विकल्प से लेकर सब परद्रव्य। '**परदव्वं परसहावं...**' वे परस्वभाव हैं और '**इदि हेयं**' आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी भावना के लिये बनाया, उसमें ऐसी बात आ गयी। दुनिया का भाग्य है कि ऐसी पुस्तक (ग्रन्थ) रह गयी। आहाहा!

यहाँ तो रागादि विकल्प तो ठीक, परन्तु पर्याय को परद्रव्य कहा, प्रभु! इस ५०वीं गाथा में तो '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' पर्याय भी '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं सगदव्वमुवादेयं**' आहाहा! अन्दर है? अर्थ में है। **पूर्वोक्त सर्व भाव परस्वभाव, परद्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं; अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य आत्मा उपादेय है।** आहाहा! ५०वीं गाथा में सार में सार ले लिया है। ४९ और ५० गाथा बहुत चली थी। ४९वीं गाथा में व्यवहार लिया, ५०वीं गाथा में कहा कि वह सब व्यवहार परद्रव्य है। दया, दान का एक विकल्प उठता है, वह परद्रव्य है। वह तो (परद्रव्य) है, परन्तु पर्याय परद्रव्य है। त्रिकाली भगवान स्वद्रव्य के आश्रय से (उत्पन्न हुई) पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहकर, परस्वभाव कहकर हेय कहा है। तीन बोल लिये हैं। है? आहाहा! ऐसी बात है। परन्तु साधारण लोगों को साधारण में से लेना है, वह कहाँ से मिले? आहाहा!

यहाँ हुकमीचन्दजी सेठ आये थे। उनके गले में एक नीलमणि का हार था। पूछा था कि कितने लाख का है? मिले तो तीन, चार, पाँच लाख मिले। तब तो राजकोटवाले नानालालभाई जवेरी थे। उनसे पूछा, कहा यह गले में हार है, उसकी वर्तमान कीमत कितनी? कि इसकी कीमत का पार नहीं होता। दस लाख कहे तो भी इसकी कीमत का पार नहीं होता। यहाँ तो दूसरा कहना है, वह हार हरा दिखायी दे, ऐसी हरी निंबोली दिखायी दे। आहाहा! छोटी-छोटी हरी निंबोली, वह नीलमणि जैसी दिखायी दे। आहाहा! परन्तु वह चीज़ और यह चीज़ दूसरी है। इसी प्रकार विकल्प और पर्याय तथा भगवान आत्मा भिन्न अलौकिक है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है;...** आहाहा! गजब बात है! **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** क्योंकि वांछा तो इच्छा है, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! मोक्ष की इच्छा तो नहीं, संवर, निर्जरा, पर्याय की तो इच्छा नहीं। निज परमतत्त्व भगवान आत्मा की वांछा का उसमें अभाव है, नाथ! तुझमें वह वांछा नहीं, प्रभु! आहाहा!

तू तो नाथ है न! नाथ का अर्थ - जो चीज़ है, उसका रक्षण करे और न हो - तेरी पर्याय में तो नयी-नयी पर्याय प्राप्त कर दे। यदि उसकी दृष्टि करे तो। आहाहा! नयी-नयी आनन्द की पर्याय। नाथ किसे कहते हैं? योगक्षेम को नाथ कहते हैं। योगक्षेम का अर्थ— प्राप्त चीज़ की रक्षा करे और अप्राप्त को प्राप्त करा दे, उसे नाथ कहा जाता है। यह नाथ की व्याख्या है। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है। अनन्त काल में नहीं प्राप्त (पर्याय) प्राप्त करा दे। उसकी दृष्टि करने से वह वस्तु मिल जाती है। आहाहा! तेरी पर्याय में वह वस्तु मिल जाती है। वांछा नहीं करनी पड़ती। आहाहा! ऐसी वह वस्तु है। उस मूल वस्तु की भावना बिना.. भावना तो आ गयी न? उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव, उसके (स्वभाव के) सन्मुख उस भावना बिना वह मिलती नहीं। वह चीज़ भावना में नहीं आयी। भावना में वह चीज़ आयी नहीं। भावना उस चीज़ में जाती नहीं, परन्तु भावना से दृष्टि में आता है। आहाहा! ऐसी बात, प्रभु! यहाँ तो बहुत बार कहा। यहाँ तो साढ़े पैंतालीस वर्ष जंगल में हुए। साढ़े पैंतालीस वर्ष। *चैत्र कृष्ण * तृतीय को आये हैं। यह चैत्र कृष्ण तीज, छियालीस वर्ष जंगल में होंगे।* आहाहा! पैंतालीस वर्ष की उम्र में आये थे। ९१ (वाँ) वर्ष चलता है, इस देह को, जड़ को। प्रभु को? अनादि-अनन्त है। आहाहा!

जो वास्तविक चीज़ है, उसकी तो वांछा भी नहीं। आहाहा! **परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है;...** आहाहा! गजब काम है। प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं। प्रभु! तेरी महिमा, तेरा माहात्म्य, तेरी महिमा का पार नहीं है, माहात्म्य का पार नहीं है। उसे शब्दों में कैसे कहें? शब्द जड़ हैं, भगवान चेतन है। दोनों की जाति भिन्न है। दो की जाति में जड़ से आत्मा को कहना है। आहाहा! यह भाषा, जिसे खबर नहीं कि यह चेतन है, तथापि भाषा में स्व-पर कहने की इतनी ताकत है। प्रभु में स्व-पर प्रकाश की ताकत है, वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। अब उसे (वाणी को) खबर नहीं कि यह आत्मा है या नहीं। परन्तु उस वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। यह क्या कहा?

भगवान आत्मा स्व-पर प्रकाशक की जहाँ वांछा नहीं। आहाहा! जहाँ वाणी में स्व-पर कहने की शक्ति है। स्व को और पर को—आत्मा यह है, ऐसा कहने की शक्ति

---

* प्रवचन में पूज्य गुरुदेवश्री ने गुजराती तिथि के अनुसार फाल्गुन कृष्ण बोला है, जिसे हिन्दी तिथि में परिवर्तित करके चैत्र कृष्ण लिखा गया है। सम्पादक / अनुवादक

स्वतन्त्र जड़ में है। आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! तथापि उस चीज़ से तो प्रभु भिन्न है। वांछा से भिन्न है तो फिर (दूसरे की बात क्या करना)। आहाहा!

**निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त...** शुभ और अशुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, क्रोध, मान (माया), लोभ-ऐसे जो **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण...** ये तो परद्रव्य के परिणाम हैं। आहाहा! स्वद्रव्य के परिणाम नहीं। स्वद्रव्य के परिणाम तो वीतरागी आनन्द। वीतरागी आनन्द, वह स्वद्रव्य का परिणाम है। आहाहा!

स्वद्रव्य को ध्यान में लेकर एकाकार होने पर पर्याय में वीतरागी आनन्द की पर्याय आती है। आहा! उसमें यह शुभ-अशुभराग नहीं है और शुभराग से यह प्राप्त नहीं होता। लोगों को यह बहुत कठिन पड़ता है। शुभराग के अतिरिक्त दूसरा क्या करे? शुभ करे... बापू! शुभ भी... आहाहा! योगीन्द्रदेव उनके श्लोक में ऐसा कहते हैं कि 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवी जीव तो पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त। उनका श्लोक है न? अपने आ गया है। पुस्तक आ गयी है। 'पाप पाप को तो सब कहे।' यह तो पूरी दुनिया कहती है। 'परन्तु अनुभवी जीव...' आत्मा के अनुभवी जीव 'पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! गजब लगे। प्रभु! वह तुझमें नहीं न? तुझमें नहीं, इसलिए पाप है।

यहाँ प्रशस्त-अप्रशस्तराग / शुभ-अशुभराग। असंख्य प्रकार का शुभराग, असंख्य प्रकार का अशुभराग। सुनने का, कहने का, पढ़ने का, प्रभु.. प्रभु.. प्रभु..! आहाहा! वे सब विकल्प तुझमें नहीं हैं, नाथ! उस **परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण निःक्रोध है;...** आहाहा! निःक्रोध, अरुचिकर कुछ है नहीं। आहाहा! इस चीज़ के दूसरे विभाव परिणाम, असंख्य प्रकार के विभाव हैं। अरे! विभाव नाम की शक्ति आत्मा में है। तो विभावशक्ति के कारण विभावरूप से परिणमना, ऐसा नहीं है। विभावशक्ति तो सिद्ध में भी है। विभावशक्ति का हेतु दूसरे चार द्रव्य में वह शक्ति नहीं है, इस कारण से आत्मा में वह शक्ति है, उसे विभाव कहा, परन्तु है तो शुद्धस्वभाव। आहाहा! और उस शक्ति का स्वभाव निर्मल परिणमन होना, वह स्वभाव है। निमित्ताधीन हो जाये तो विकार होता है। निमित्ताधीन न हो और अपने स्वभाव के आधीन हो जाये तो निर्मल धारा बहती है। आहाहा! इस कारण से उस आत्मा में शुभ और अशुभभाव **परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण...** वह तो परद्रव्य परिणाम का अभाव है। परद्रव्य परिणाम। आहाहा! (इस) कारण से **निःक्रोध है;...**

**निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण...** निश्चय से तो, यथार्थ से तो वस्तुस्थिति से, निश्चयनय अर्थात् वस्तुस्थिति से, वस्तु की मर्यादा से देखो तो प्रभु को **सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण...** त्रिकाल परम वीतराग स्वभाव -स्वरूप होने के कारण **निर्मान है;...** आहाहा! यहाँ तो साधारण कुछ समझाने का, क्षयोपशम का मान मिले वहाँ (अभिमान हो जाता है)। अरे प्रभु! वह तो पर है न, नाथ! समझाने का विकल्प भी दुःखरूप है।

समाधिशतक में तो ऐसा कहा, समझाने का विकल्प पागलपन है। आहाहा! समाधिशतक में ऐसा पाठ है। प्रभु अन्दर महा भगवान विराजता है। उसमें से निकलना, विकल्प में आना, उसे पागल कहा है। समाधिशतक में (कहा है)। आहाहा! पूज्यपादस्वामी ने पागल (कहा है)। आहाहा! मैं यह कहता हूँ, मैं यह समझाता हूँ, ऐसा अभिमान, प्रभु! छोड़ दे। ऐसा आत्मा में नहीं है। आहाहा!

**परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण निःक्रोध है; निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप...** वापस। **सदा परमसमरसी...** त्रिकाल वीतरागभावरूप होने से। भगवान आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप, समरसीभाव त्रिकाल है, उसमें खण्ड या अल्पज्ञता या विपरीतता या अशुद्धता कभी नहीं होती। आहाहा! ऐसा परमतत्त्व वह **परमसमरसीभाव -स्वरूप होने के कारण निर्मान है;...** ऐसा होने से निर्मान है। आहाहा! गजब काम किया है न?

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है। उसमें फिर टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मिल गये। आहाहा! वे तो ऐसा कहते हैं कि यह विकल्प उठे, वह परद्रव्य परिणाम है। अरे! पर्याय परद्रव्य! जैसे परद्रव्य में से अपनी नयी शुद्ध निर्मल पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय में से निर्मल शुद्धपर्याय नयी नहीं आती; इसलिए उस पर्याय को हम परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! जैसे भगवान को छोड़कर दूसरे द्रव्य में से आत्मा की, शान्ति की, समकित की, ज्ञान की, चारित्र की पर्याय नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? जैसे परद्रव्य में से नहीं होती, वैसे अपनी पर्याय निर्मल है, निर्मल; उस पर्याय में से पर्याय नहीं होती, प्रभु! आहाहा! इस कारण से पर्याय को भी परद्रव्य कह दिया है। ५०वीं गाथा। आहाहा! बात सुनना कठिन पड़े। बाहर में क्रियाकाण्ड में फँस गया। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। वह **निर्मान है;...**

आहाहा! **निश्चयनय से नि:शेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण...** समस्त प्रकार से प्रभु तो अन्तर्मुख है। पर्याय में भी नहीं आता। आहाहा! **नि:शेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण...** वह तो अन्तर्मुख चीज़ है, द्रव्य है, ध्रुव है। आहाहा! बात सूक्ष्म पड़े, प्रभु! परन्तु यह मनुष्यपना मिला, वह चला जायेगा, नाश हो जायेगा। आहाहा! राजकुमार के पास बीस करोड़ रुपये। इन्दौर, और बेचारे गिर गये थे। आज समाचार मिले। अब अभी कुछ ठीक है परन्तु बीस करोड़ क्या करे? शरीर की पर्याय जिस समय में होनेवाली है, उस समय में होगी, होगी और होगी ही। तेरा (तू) ध्यान रखे और ख्याल रखे तो पर्याय बदलेगी, ऐसा है नहीं। क्रमबद्ध (है)। छह द्रव्यों में क्रमबद्धपर्याय उस समय में होनेवाली है, वह होती है। परन्तु ऐसी दृष्टि जिसकी है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर होती है। जिसमें-ज्ञायकतत्त्व में परमतत्त्व की वांछा भी नहीं, ऐसे तत्त्व पर दृष्टि है। आहाहा!

इस कारण से कहते हैं, **नि:शेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण...** बहिर्मुख की पर्याय में भी नहीं आता। आहाहा! वह तो अन्तर्मुख तत्त्व है। **उक्तप्रकार का ( ऊपर कहे हुए प्रकार का ), विशुद्ध...** वि-शुद्ध। विशुद्ध शब्द दो प्रकार से प्रयुक्त होता है। शुभभाव में भी विशुद्ध प्रयोग होता है और शुद्ध में भी विशुद्ध (शब्द) प्रयोग होता है। यहाँ तो शुद्ध में विशुद्ध कहना है। विशुद्धभाव शास्त्र में आता है। शुभभाव को भी विशुद्ध कहते हैं। वह तो नहीं। वह तो आत्मा में है ही नहीं। यह तो **विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण...** आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा नित्य निरावरण, त्रिकाल निरावरण... आहाहा! है?

**विशुद्ध सहजसिद्ध...** स्वाभाविक सिद्धवस्तु। उत्पत्ति है नहीं, नाश है नहीं। किसी आधार से उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। स्वत:सिद्ध। ऐसी स्वत:सिद्ध। वह सहजसिद्ध, स्वत:सिद्ध, वह स्वाभाविक सिद्ध। ऐसा **विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण...** नित्य-निरावरण है। आहाहा! गोम्मटसार में करणानुयोग में ऐसा आता है कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म के उदय में ऐसा होता है, उदय में ऐसा होता है। वह सब व्यवहार / निमित्त से कथन है, प्रभु! वस्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, तो दूसरे द्रव्य से दूसरे द्रव्य में कुछ हो, ऐसा है नहीं।

यहाँ कहते हैं, प्रभु तो **नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप उपादेय है।** देखो! आहाहा! बहुत ही शब्द लिये हैं। **विशुद्ध...** विशेष शुद्ध। **सहजसिद्ध...** विशेष शुद्ध, स्वयंसिद्ध, स्वभाव से सिद्ध, स्वभाव से ही है। **नित्य-निरावरण...** है। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य / त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! **निज कारणसमयसार...** ऐसा जो

नित्य निरावरण, स्वाभाविक सिद्ध वस्तु निज कारणसमयसार। पर्याय तो उत्पन्न होती है, वह कहीं नित्य निरावरण नहीं है। नित्य निरावरण तो भगवान आत्मा ध्रुव है, वही उपादेय है। वह निज कारणसमयसार, अपना निज कारणसमयसार, उसका **स्वरूप उपादेय है।** वह आदरणीय है, वह स्वीकार करनेयोग्य है, वह सत्कार करनेयोग्य है, उसके सन्मुख होने योग्य है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़े। ऐ.. ताराचन्दजी! ताराचन्दजी आये हैं न! आहाहा!

**निज कारणसमयसार....** कैसा? कि ऐसा। जिसका **स्वरूप उपादेय है।** दृष्टि में आदरणीय वह एक ही चीज़ है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, वह पर्याय उसमें नहीं, तथापि उस पर्याय में आदरणीय वह (कारणसमयसार) है, तथापि वह पर्याय और वह चीज़ दोनों एक नहीं होती। पर्याय, पर्यायरूप रहती है; ध्रुव, ध्रुवरूप रहता है। ध्रुव में से पलटता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! केवलज्ञान ध्रुव में से होवे तो पलटे नहीं - ध्रुव पलटे नहीं, कहते हैं। आहाहा! ध्रुव नहीं पलटता। पलटने की पर्याय स्वतन्त्र प्रगट होती है। आहाहा! ऐसा आत्मद्रव्य, अरे! भाग्यवान को कान में पड़े, ऐसी बात है। आहाहा! दूसरों को एकान्त लगता है। यह तो हमें खबर है, प्रभु! यह सम्यक् एकान्त है और वह निश्चयनय में.. समयक् एकान्त है, वह निश्चयनय है। सम्यक् एकान्त, वह निश्चयनय है; प्रमाण नहीं। सम्यक् एकान्त शुद्ध त्रिकाली भगवान विशुद्ध सहजस्वरूप, वही उपादेय है, यह एकान्त सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! ऐसा ज्ञान होने के बाद पर्याय का ज्ञान होता है, तब प्रमाण कहने में आता है। तब प्रमाण कहते हैं। आहाहा!

प्रमाण के दो विषय हैं—त्रिकाली द्रव्य और एक समय की पर्याय। शुद्धनय का विषय एक है त्रिकाली द्रव्य। पर्यायनय का विषय एक है वर्तमान पर्याय। समझ में आया? निश्चयनय का विषय सम्यक्त्व का (विषय) ध्रुव एकरूप है। प्रमाण नहीं आया। एक समय की पर्याय का विषय व्यवहारनय का-पर्यायार्थिक का है। दोनों मिलकर प्रमाणनय का (प्रमाणज्ञान का) विषय है परन्तु प्रमाण का विषय आदरणीय नहीं है। आहाहा!

नयचक्र में लिया है कि प्रमाण पूज्य क्यों नहीं है? क्योंकि उसमें पर्याय का निषेध नहीं आता, इसलिए पूज्य नहीं है। आहाहा! नयचक्र में है। आहाहा! भगवान! यह बात तो अन्तर की है, प्रभु! आहाहा! उसे निश्चयाभास कहकर निकाल डालना... वह तो निश्चयाभास है, अमुक है। प्रभु! ऐसा नहीं करना। व्यवहार के स्थान में व्यवहार होता है। व्यवहारनय नहीं है, ऐसा नहीं है। परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। व्यवहार नहीं है - ऐसा नहीं है। निश्चय और व्यवहार दो नय हैं। भगवान के उपदेश में दो नय आये

हैं। पहले भी नियमसार में, पंचास्तिकाय में कहा था। दो नय हैं, परन्तु एक नय का विषय आदरणीय है और एक नय का विषय जाननेयोग्य है। आहाहा! पर्याय का विषय पर्यायनय व्यवहारनय का विषय है। ध्रुव का विषय निश्चय का विषय है। दो में दो अंश आये। दो में एक-एक अंश आये। भले ध्रुव है परन्तु पर्यायरहित है, इसलिए अंश कहा और प्रमाण के विषय में ध्रुव और पर्याय दोनों आये, तथापि प्रमाण में पर्याय का निषेध न होने से (प्रमाण) पूज्य नहीं है। आहाहा! त्रिकाली चीज़ भगवान उपादेय है, वह पूज्य है। आहाहा! ओहोहो!

**इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री प्रवचनसार की टीका में ८वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि—**ऊपर है।

**इत्युच्छेदात्पर-परिणतेः कर्तृ-कर्मादि-भेद-**
**भ्रान्तिध्वन्सादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।**
**सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं,**
**स्थास्यत्युद्यत्सहज-महिमा सर्वदा मुक्त एव।।**

आहाहा!

**मुमुक्षु : 'मुक्त एव'**

**पूज्य गुरुदेवश्री : 'मुक्त एव'**

आहाहा! यहाँ तो प्रभु! जन्म-मरणरहित होने की बात है। अरे रे! भले दुनिया न गिने, न माने, परन्तु जिसमें जन्म-मरण है, उस चीज़ में तो नरक और निगोद भी आयेगा। आहाहा! जैसे तिर्यंच में माता-पिता में जन्म-मरण होता है, वैसे एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय में नहीं होता। उत्पत्ति हो वह जन्म और देह छूट जाये, वह मरण। आहाहा! जैसे कि तिर्यंच, मनुष्य में माता-पिता हैं। उनके गर्भ में जाता है और सवा नौ महीने रहता है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर जैसे भी, राजा श्रेणिक निकलेंगे, वे माता के गर्भ में सवा नौ महीने रहेंगे। तीर्थंकरगोत्र बाँधा है परन्तु एक भव रहा... आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय को तो माता-पिता हैं नहीं परन्तु जन्म-मरण नहीं है, ऐसा नहीं है। वे जहाँ उत्पन्न होते हैं, वह जन्म और देह छूटती है, वह मरण। आहाहा! भगवान आत्मा जन्म-मरण में बाहर में दिखता है। माता के गर्भ में आता है, वह जन्मता है, यह दिखता है परन्तु वह चीज़ आत्मा की नहीं है। आहाहा! यह आ गया। जन्म, मृत्यु, जरा आत्मा में नहीं है। आहाहा! ऐसी दृष्टि

हुए बिना चैतन्य का स्वीकार और सत्कार नहीं होता। उसका स्वीकार हुए बिना दूसरी किसी भी चीज़ की महिमा आती है तो वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

अमृतचन्द्राचार्य ने यह कहा, **इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद द्वारा...** परपरिणति अर्थात् शुभ-अशुभराग। उसका उच्छेद किया। ओहोहो! **परपरिणति के उच्छेद द्वारा ( अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा ) तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति, उसके भी नाश द्वारा...** आहाहा! मैं पर्याय का कर्ता हूँ और पर्याय मेरा कार्य है, पर्याय मैंने रखी है और पर्याय का साधन पर्याय है; पर्याय पर्याय में से उत्पन्न हुई और पर्याय का आधार पर्याय है, ऐसा है। पर्याय में ऐसे षट्कारक हैं, परन्तु मुझमें नहीं। आहाहा! यह **कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति...** आहाहा! **उसके भी नाश द्वारा...** आहाहा! पर्याय में षट्कारक परिणमन अनन्त द्रव्य में, प्रत्येक द्रव्य में, एक समय में होता है। प्रत्येक समय षट्कारक से परिणमन होता है। अनन्त द्रव्य में, प्रत्येक द्रव्य में, किसी काल बिना, प्रत्येक द्रव्य में एक समय में षट्कारक का परिणमन होता है परन्तु वह द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

**कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति...** आहाहा! भगवान आत्मा राग का कर्ता, राग का भोक्ता और राग का नाश कर्ता - यह भ्रान्ति है, प्रभु! आहाहा! **भ्रान्ति, उसके भी नाश द्वारा अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है...** आहाहा! सब वांचन किया, सब किया, श्रद्धा की परन्तु अन्तर में-अन्तरतत्त्व में दृष्टि की, तब उपलब्ध हुआ। इसके बिना आत्मा उपलब्ध नहीं होता। आहाहा! कहा न? **जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद ( निर्मल ) तेज में लीन रहता हुआ,...** आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि में आत्मा प्राप्त हुआ, उसका अर्थ कि आत्मा में अपने ज्ञान के तेज में लीन होता हुआ। आहाहा! राग का भी कर्ता नहीं। छद्मस्थ है, राग आता है... आहाहा! परन्तु कर्ता-कर्म की भ्रान्ति से रहित... आहाहा! **आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद ( निर्मल )...** चैतन्य ज्ञायक प्रकाश। चैतन्य का पूर। पानी का पूर जैसे तिरछा चलता है, वैसे यह चैतन्य पूर ध्रुव है, वह ऐसे चलता है। है.. है.. है.. आहाहा! **विशद ( निर्मल ) तेज में लीन रहता हुआ, अपनी सहज ( स्वाभाविक ) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।** आहाहा! ऐसी उसकी ताकत है कि उसका जिसने स्वीकार किया, वह सदा उस दशा में रहेगा। उसे कभी भवादि नहीं होंगे। ( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)